ISSN 2277-5897 SABLOG
PEER REVIEWED JOURNAL

143

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

सबलोग

जनवरी 2026 • ₹ 50

नवजागरण, वन्दे मातरम् और बंगाल

- दिल्ली महानगर के अदृश्य मछुआरे
- देश-काल से टकराती दो विधाएँ
- ये सनातन रंगमंच क्या है

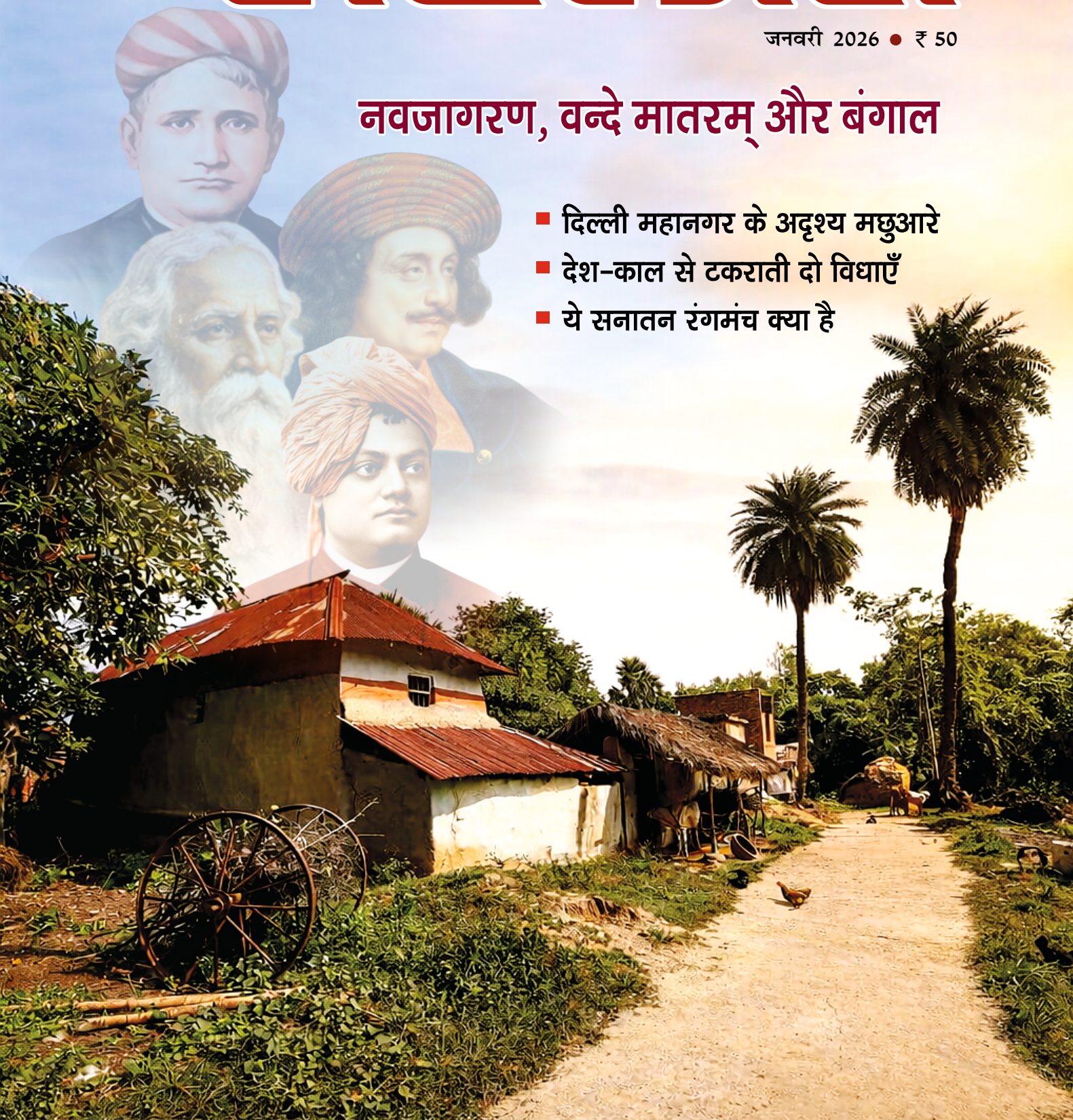

ISSN 2277-5897 SABLOG PEER REVIEWED JOURNAL

लोक चेतना का राष्ट्रीय मासिक

सबलोग

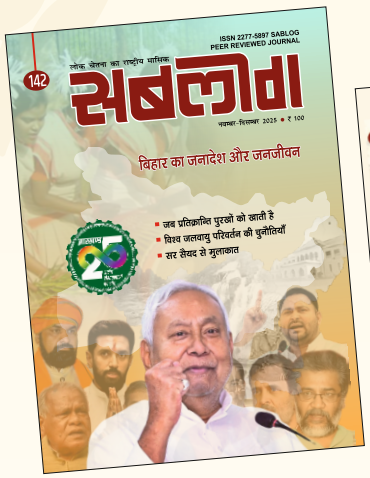

प्रिय साथियो!

'सबलोग' की शुरूआत उस समय हुई थी, जब समाज से विचार को बाहर धकेलने का एक वैश्विक अभियान तेज हो रहा था—जब राजनीति वैमनस्य को अपना सबसे कारगर औजार बना रही थी, समरसता को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा था और लोकतन्त्र को पंगु करने के लिए उसके सभी स्तम्भों को एक-एक कर हिलाया जा रहा था। दुर्भाग्य से, वही हवा आज आँधी बन चुकी है, जो चैन, चेतना, शान्ति, सद्भाव और परस्परता—सब कुछ उड़ा ले जाना चाहती है।

जनवरी 2009 को प्रकाशित अपने पहले अंक में 'सबलोग' ने आजादी के बाद के भारत का आत्मालोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया था। तब से लेकर आज तक यह पत्रिका उन हिन्दी लेखकों, चिन्तकों और पाठकों की पसन्द बनी हुई है, जो मानते हैं कि विचार केवल व्याख्या नहीं करता, बल्कि एक बेहतर दुनिया के निर्माण का साहस भी देता है। 'सबलोग' ने शुरू से ही यह मानकर काम किया है कि बिना वैचारिक संघर्ष के लोकतन्त्र केवल एक औपचारिक ढाँचा बनकर रह जाता है। अपने प्रिंट संस्करण में 'सबलोग' हर महीने किसी एक ज्वलन्त और अनिवार्य प्रश्न को अभियान की तरह उठाती है और गहन, बहसतलब तथा दूरगामी विमर्श के साथ अपने समय से संवाद करती है। वहीं अपने पोर्टल के माध्यम से यह समकालीनता के केन्द्रीय प्रश्नों पर प्रखर वैचारिकता से लैस, बहुआयामी और सतत हस्तक्षेप करती रही है। यही कारण है कि आज 'सबलोग' को वैकल्पिक मीडिया की एक विश्वसनीय, निर्भीक और जिम्मेदार आवाज के रूप में पहचाना जाता है।

लेकिन कोई भी आवाज अपने आप दूर तक नहीं जाती। उसके लिए भरोसे, साझेदारी और सहयोग की जरूरत होती है। आप में से कई साथियों ने समय-समय पर आर्थिक सहयोग दिया है—उसके लिए हम हृदय से कृतज्ञ हैं। जिन्होंने अब तक ऐसा नहीं किया है, उनसे आज यह विनम्र आग्रह है कि वे आगे आएँ। सच यह है कि 'सबलोग' को सहयोग देने वाला कोई कॉरपोरेट, कोई सत्ता संरचना या कोई अदृश्य संरक्षक नहीं है। इसके सहयात्री केवल आप हैं, इसके अपने सब 'लोग'। निवेदन है कि हर माह 'सबलोग' की दस प्रतियाँ आपके पास भेजी जाएँगी। इसके लिए आप मासिक 500 रुपये का नियमित आर्थिक सहयोग करें। यदि हर माह भेजना असुविधाजनक लगे, तो वार्षिक 5000 रुपये का सहयोग भी किया जा सकता है। आज स्थिति यह है कि रेलवे के बुक स्टालों पर पत्र-पत्रिकाओं के बजाय बिस्कुट और कुरकुरे बिक रहे हैं, और अनेक पुस्तक विक्रेता छोटी पत्रिकाओं को पत्रिका बेचकर भी भुगतान नहीं करते। इसलिए यह आर्थिक सहयोग दरअसल वितरण सहयोग भी है।

यह निवेदन करते हुए मुझे जितना संकोच हो रहा है, उससे कहीं अधिक विश्वास है कि हिन्दी पत्रकारिता की इस वैचारिक यात्रा में आपका सहयोग अवश्य मिलेगा—एक ऐसे समय में, जब विचार को बचाए रखना स्वयं एक प्रतिरोध बन चुका है। आपके सहयोग से ही 'सबलोग' की यह आवाज जीवित रहेगी, सशक्त होगी और असरदार बनेगी।

आभार और अभिवादन सहित, 'सबलोग' की ओर से!

— किशन कालजयी

सबलोग

खाता संख्या : 49480200000045

बैंक ऑफ बड़ौदा

शाखा : बादली, दिल्ली

IFSC - BARB0TRDBAD

Scan to pay with any UPI app

सबलोग-143

वर्ष 17, अंक 1, जनवरी 2026

ISSN 2277-5897 SABLOG

PEER REVIEWED JOURNAL

www.sablog.in

सम्पादक

किशन कालजयी

संयुक्त सम्पादक

प्रकाश देवकुलिश

राजन अग्रवाल

उप-सम्पादक

गुलशन चौधरी

समीक्षा समिति

(Peer Review Committee)

आनन्द कुमार

रत्नेश्वर मिश्र

मणीन्द्र नाथ ठाकुर

मंजु रानी सिंह

सफदर इमाम कादरी

प्रमोद मीणा

राजेन्द्र रवि

मधुरेश

महादेव टोप्पो

विजय कुमार

आशा

सन्तोष कुमार शुक्ल

अखलाक 'आहन'

अभय सागर मिंज

सम्पादकीय सम्पर्क

बी-3/44, तीसरा तल, सेक्टर-16,

रोहिणी, दिल्ली-110089

+918340436365

sablogmonthly@gmail.com

सदस्यता शुल्क

यह अंक : 50 रुपये

वार्षिक : 1100 रुपये रजिस्टर्ड डाक से

सबलोग

खाता संख्या-49480200000045

बैंक ऑफ बड़ौदा,

शाखा-बादली, दिल्ली

IFSC-BARB0TRDBAD

(Fifth Character is Zero)

स्वामी, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी द्वारा बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089 से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिण्टर्स, 556 जी.टी. रोड शाहदरा दिल्ली-110032 से मुद्रित।

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

पत्रिका अव्यावसायिक और सभी पद अवैतनिक।

पत्रिका से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायक्षेत्र दिल्ली।

संवेद फाउण्डेशन का मासिक प्रकाशन

नवजागरण, वन्देमातरम् और बंगाल

मुनादी / नवजागरण की भूमि और संकट का वर्तमान 4

बंगाल में नवजागरण, 'हिन्दुत्व' और भाजपा : **रविभूषण** 6

वन्दे मातरम्, विवाद और पुनर्पाठ : **मृत्युंजय कुमार सिंह** 10

आनन्द मठ का पुनर्मूल्यांकन : **गीता दूबे** 13

ध्रुवीकरण और सद्भाव की चुनौती : **शैलेन्द्र शान्त** 16

भारतीय मानस में राष्ट्रगीत : **रूपा गुप्ता** 18

राष्ट्रगीत और समकालीन विवाद : **आदित्य विक्रम सिंह** 21

बंगाल डायस्पोरा का रचनात्मक विस्तार : **दीक्षा गुप्ता** 23

1084वें की माँ : उपन्यास और सिनेमा : **अमरेन्द्र कुमार शर्मा** 26

सृजनलोक

सात कविताएँ : **बच्चा लाल 'उन्मेष',** टिप्पणी : **आशुतोष,** रेखांकन: **विनोद कुमार राज 'विद्रोही'** 29

देश

हरियाणा / पंचायत की बदलती भाषा : **अजय सिंह** 31

बिहार / नक्सलवाद के खिलाफ बड़ी कामयाबी : **कुमार कृष्णन** 33

स्तम्भ

तीसरी घण्टी / ये सनातन रंगमंच क्या है : **राजेश कुमार** 35

यत्र-तत्र / देश-काल से टकराती दो विधाएँ : **जय प्रकाश** 38

देशान्तर / कृतज्ञता बनाम राष्ट्रप्रेम : **धीरंजन मालवे** 41

कविताघर / कविता ने कहा था–एक दिन कटेंगे वोट : **प्रियदर्शन** 44

विविध

साहित्य / संस्कृत-गजल के बारे में : **बहादुर मिश्र** 46

शहरनामा / दिल्ली महानगर के अदृश्य मछुआरे : **राजेन्द्र रवि** 49

स्मरण / मेरे मित्र और उसकी लेखनी : **भावना शेखर** 52

अन्तरराष्ट्रीय / भारत-कनाडा सम्बन्ध : **ललित गर्ग** 54

सिनेमा / एआई बच्चों की तरह है : **रक्षा गीता** 56

लिये लुकाठी हाथ / साहब जी, ईमानदारी से सच बताइयेगा : **श्रीकान्त आप्टे** 58

आवरण : शशिकान्त सिंह

अगला अंक : हाशिये की आवाज और लोकतन्त्र

नवजागरण की भूमि और संकट का वर्तमान

भारत के आधुनिक इतिहास में यदि किसी एक भूभाग ने विचार, प्रतिरोध और सांस्कृतिक पुनर्रचना को एक साथ सम्भव किया है, तो वह बंगाल है। बंगाल केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं रहा, वह एक वैचारिक अनुभव रहा है—एक ऐसी प्रयोगशाला, जहाँ आधुनिक भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रश्न पहली बार पूरी तीव्रता के साथ सामने आये। उन्नीसवीं सदी का बंगाल नवजागरण भारतीय समाज के भीतर आत्मालोचना, सुधार और आधुनिक चेतना का वह निर्णायक क्षण था, जिसने आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन की वैचारिक जमीन तैयार की। आज, जब वन्दे मातरम् संसद से लेकर सड़क तक बहस का विषय है और बंगाल एक बार फिर निर्णायक विधान सभा चुनाव की ओर बढ़ रहा है, तो बंगाल को केवल चुनावी गणित या भावनात्मक प्रतीकों के सहारे समझना न सिर्फ अधूरा, बल्कि भ्रामक भी होगा।

बंगाल का नवजागरण किसी एक व्यक्ति, संस्था या आन्दोलन की देन नहीं था। यह औपनिवेशिक शासन के भीतर पैदा हुई सामाजिक जड़ता, धार्मिक रूढ़ियों और बौद्धिक ठहराव के विरुद्ध एक सामूहिक बौद्धिक प्रतिक्रिया थी। राजा राममोहन राय से लेकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तक, डेरोजियो से लेकर ब्रह्म समाज और यंग बंगाल मूवमेण्ट तक—इन सभी ने भारतीय समाज को तर्क, करुणा, आत्मसम्मान और आधुनिकता की नयी भाषा दी। यह नवजागरण पश्चिमी आधुनिकता की नकल नहीं था, बल्कि भारतीय परम्परा के भीतर से ही उसके पुनर्पाठ और पुनर्निर्माण का प्रयास था। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, धार्मिक-आलोचना, वैज्ञानिक दृष्टि और मानवतावाद—ये सब बंगाल की सामाजिक चेतना की रीढ़ बने।

महत्त्वपूर्ण यह है कि बंगाल का नवजागरण केवल सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं रहा। उसने राजनीति, साहित्य, शिक्षा और राष्ट्रबोध—सभी को गहराई से प्रभावित किया। भारतीय राष्ट्रवाद का जो बौद्धिक ढाँचा आगे चलकर काँग्रेस, क्रान्तिकारी आन्दोलनों और वाम राजनीति में विकसित हुआ, उसकी कई बुनियादी अवधारणाएँ बंगाल में ही गढ़ी गयीं। कलकत्ता विश्वविद्यालय और प्रेसिडेंसी कॉलेज इसी चेतना के संस्थागत रूप थे। इसलिए जब हम आज बंगाल की राजनीतिक संस्कृति की बात करते हैं, तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ राजनीति हमेशा विचार और संस्कृति से गहरे जुड़ी रही है।

इसी नवजागरण की कोख से वन्दे मातरम् का जन्म हुआ। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित यह गीत केवल एक साहित्यिक कृति नहीं था; यह औपनिवेशिक दमन के बीच उभरती राष्ट्रीय चेतना की आवाज था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान वन्दे मातरम् ने लोगों को भावनात्मक रूप से जोड़ा, उन्हें एक साझा संघर्ष की अनुभूति दी। यह गीत सत्ता-विरोधी था, दासता-विरोधी था और बिखरे हुए समाज को एक नैतिक-सांस्कृतिक सूत्र में बाँधने का प्रयास था। लेकिन इसकी यात्रा सरल नहीं रही। इसके कुछ अंशों को लेकर प्रारम्भ से ही बहसें होती रहीं। यही कारण है कि स्वतन्त्र भारत में संविधान सभा ने इसे राष्ट्रगीत का दर्जा दिया, न कि राष्ट्रगान का। यह निर्णय भारतीय बहुलता और संवैधानिक सन्तुलन का उदाहरण था—जहाँ भावनात्मक प्रतीकों को सम्मान भी मिला और विविध धार्मिक-सांस्कृतिक संवेदनाओं का ध्यान भी रखा गया।

आज संसद में वन्दे मातरम् को लेकर उठी बहस हमें इस बुनियादी प्रश्न के सामने खड़ा करती है कि क्या हम इतिहास को उसके सन्दर्भ में समझ रहे हैं या उसे वर्तमान राजनीति के औजार में बदल रहे हैं। जब राष्ट्रवाद प्रतीकों के इर्द-गिर्द सिमटने लगता है, तो वह समावेश की बजाय बहिष्कार की प्रवृत्ति को जन्म देता है। लोकतन्त्र केवल भावनाओं से नहीं चलता; वह संस्थाओं, जवाबदेही और बहस की गुणवत्ता से चलता है। यदि संसद में प्रतीकों की व्याख्या मुख्य विषय बन जाए और बेरोजगारी, असमानता, कृषि संकट, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे सवाल पीछे छूट जाएँ, तो यह लोकतान्त्रिक प्राथमिकताओं के संकट का संकेत है।

बंगाल की राजनीति को समझे बिना वन्दे मातरम् की बहस और आगामी चुनावों को समझना सम्भव नहीं। बंगाल की राजनीतिक संस्कृति हमेशा प्रतिरोध, आन्दोलन और वैचारिक संघर्ष से निर्मित रही है। स्वतन्त्रता आन्दोलन से लेकर वामपन्थी राजनीति के लम्बे दौर तक, बंगाल की राजनीति कभी भी केवल सत्ता-प्रबन्धन की राजनीति नहीं रही। वाम आन्दोलन ने वर्ग, भूमि, श्रम और समानता को राजनीति के केन्द्र में रखा। सत्ता-परिवर्तन के बावजूद यह चेतना पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। आज भी बंगाल में राजनीति केवल विकास के नारों पर नहीं, बल्कि पहचान, संस्कृति और इतिहास की व्याख्या पर लड़ी जा रही है।

इसी पृष्ठभूमि में हिन्दू पुनरुत्थानवाद और बाद के हिन्दुत्व को समझना आवश्यक है। प्रारम्भिक दौर में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद आत्म-सम्मान और औपनिवेशिक प्रतिरोध से जुड़ा था, न कि किसी समुदाय के विरुद्ध घृणा से। हिन्दुत्व शब्द का प्रयोग भी सबसे पहले बंगाल में चन्द्रनाथ बसु ने सांस्कृतिक इतिहास और आत्मबोध के अर्थ में किया। लेकिन बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों तक आते-आते इसमें जनसांख्यिकीय भय और सामुदायिक असुरक्षा का तत्त्व जुड़ने लगा। उपेन्द्रनाथ मुखर्जी की पुस्तक 'हिन्दूः एक मरती हुई नस्ल' ने इस भय को वैचारिक भाषा दी। यहीं से सांस्कृतिक विमर्श धीरे-धीरे साम्प्रदायिक राजनीति में बदलने लगा।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय इस पूरी प्रक्रिया के केन्द्रीय व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं। 'आनन्द मठ' और 'वन्दे मातरम्' ने औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन को गहरी भावनात्मक ऊर्जा प्रदान की और राष्ट्रबोध की एक सशक्त सांस्कृतिक भाषा गढ़ी। इन रचनाओं में राष्ट्र की कल्पना एक ऐसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि से निर्मित होती है, जिसमें मुस्लिम समुदाय प्रायः 'अन्य' के रूप में उपस्थित है। इसी सन्दर्भ में अहमद सोफा जैसे चिन्तकों ने बंकिम को हिन्दू राष्ट्र की वैचारिक कल्पना का प्रारम्भिक सूत्रधार माना है।

आज का राजनीतिक हिन्दुत्व बंकिम की जटिल और ऐतिहासिक रूप से सीमित राष्ट्रकल्पना को एकांगी और आक्रामक रूप में इस्तेमाल करता है, जबकि उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ को पूरी तरह अनदेखा कर देता है।

बंकिम के जिस हिन्दू चेतना के उभार को आज विवादास्पद मानकर देखा जाता है, उसे उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ से काटकर समझना एक प्रकार का सरलीकरण होगा। उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध भारतीय समाज के लिए गहरे आत्मसंशय और सांस्कृतिक संकट का दौर था। औपनिवेशिक सत्ता, पश्चिमी वर्चस्व और मिशनरी गतिविधियों के दबाव में भारतीय समाज अपने

ही इतिहास, परम्परा और आत्म-सम्मान को नये सिरे से परिभाषित करने की कोशिश कर रहा था। बंकिम की हिन्दू चेतना इसी व्यापक ऐतिहासिक प्रतिक्रिया का हिस्सा थी, न कि कोई एकांगी या असाधारण प्रवृत्ति।

यदि हम समकालीन हिन्दी क्षेत्र की ओर देखें, तो लगभग उसी समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त की पत्रकारिता और लेखन में भी 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' की त्रयी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह त्रयी किसी साम्प्रदायिक आक्रामकता का नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्मबोध और भाषायी-राष्ट्रीय चेतना के निर्माण का सूत्र थी। भारतेन्दु युग की पत्रकारिता में भाषा, संस्कृति और राष्ट्र की रक्षा का आग्रह औपनिवेशिक प्रभुत्व के विरुद्ध एक बौद्धिक प्रतिरोध के रूप में सामने आता है।

बालकृष्ण भट्ट की आलोचनात्मक दृष्टि हो या प्रताप नारायण मिश्र की तीखी पत्रकारिता—इन सबमें हिन्दू समाज को आत्मचेतस, संगठित और आधुनिक बनाने की चिन्ता दिखाई देती है। बालमुकुन्द गुप्त का व्यंग्य भी इसी सांस्कृतिक आत्म-संरक्षण की भावना से संचालित है। बंकिम उसी वैचारिक वातावरण की उपज थे, जिसमें भाषा, धर्म और राष्ट्र एक-दूसरे में गुँथे हुए थे।

समस्या वहाँ से शुरू होती है, जहाँ इस ऐतिहासिक चेतना को आज की राजनीति अपने सन्दर्भ से काटकर, चयनात्मक और बहिष्कारी रूप में इस्तेमाल करती है। उन्नीसवीं सदी की सांस्कृतिक प्रतिक्रिया और इक्कीसवीं सदी के आक्रामक राजनीतिक हिन्दुत्व के बीच अन्तर को समझे बिना बंकिम या भारतेन्दु परम्परा का निष्पक्ष मूल्यांकन सम्भव नहीं है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बंगाल में प्रवेश 1939 में हुआ, लेकिन लम्बे समय तक उसका प्रभाव सीमित रहा। बंगाल की उदार, धर्मनिरपेक्ष और वामपन्थी परम्परा उसके विस्तार में बाधा बनी रही। वास्तविक बदलाव 2009 के बाद दिखाई देता है। वाम मोर्चा के पतन, काँग्रेस की अप्रासंगिकता और तृणमूल काँग्रेस की सीमाओं ने भाजपा और संघ को अवसर दिया। पिछले डेढ़ दशक में भाजपा का उभार केवल संगठनात्मक क्षमता का परिणाम नहीं है, बल्कि साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की सुनियोजित राजनीति का नतीजा है।

तृणमूल काँग्रेस का उभार वाम मोर्चा के दीर्घ और जड़ होते शासन के विरुद्ध जनाक्रोश की स्वाभाविक परिणति था। ममता बनर्जी ने न केवल सत्ता-परिवर्तन किया, बल्कि बंगाल की राजनीति में उस प्रभुत्व को तोड़ा, जो तीन दशकों से अधिक समय तक लगभग निर्विवाद बना रहा था। वाम शासन के अन्त के साथ ही यह उम्मीद भी जगी थी कि बंगाल की राजनीति एक अधिक लोकतान्त्रिक, संवेदनशील और जनोन्मुख दिशा लेगी। लेकिन एक दशक से अधिक समय के शासन के बाद तृणमूल स्वयं उन्हीं संरचनात्मक कमजोरियों की गिरफ्त में दिखाई देती है, जिनसे संघर्ष कर वह सत्ता तक पहुँची थी। कल्याणकारी योजनाओं, महिला सहायता कार्यक्रमों और गरीबोन्मुखी छवि के बावजूद ममता सरकार पर कुशासन, भ्रष्टाचार और संस्थागत क्षरण के आरोप लगातार गहराते गये हैं। शिक्षक भर्ती घोटाले ने न केवल प्रशासनिक ईमानदारी पर सवाल खड़े किये, बल्कि शिक्षा जैसी बुनियादी व्यवस्था को भी गहरे संकट में डाल दिया। नगर निकायों और पंचायत चुनावों में हिंसा, प्रशासनिक पक्षपात और विपक्ष के दमन ने यह सन्देश दिया कि सत्ता का चरित्र बदल गया है, संवेदना नहीं। सत्ता अब जनविश्वास से नहीं, बल्कि संगठनात्मक दबाव और भय के तन्त्र से संचालित होने लगी है। इससे तृणमूल की नैतिक वैधता को गम्भीर क्षति पहुँची है।

इसी के साथ मुस्लिम तुष्टिकरण के आरोप और बाँग्लादेशी घुसपैठ का प्रश्न बंगाल की राजनीति में स्थायी विवाद का रूप ले चुके हैं। सीमावर्ती इलाकों में अवैध घुसपैठ, पहचान-पत्रों के दुरुपयोग और जनसांख्यिकीय असन्तुलन जैसे मुद्दे वास्तविक हैं और इन्हें सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता। समस्या यह नहीं है कि ये सवाल उठाए जा रहे हैं, बल्कि यह है कि सरकार इन्हें प्रशासनिक, संवैधानिक और मानवीय दृष्टि से हल करने के बजाय या तो टालती रही है या राजनीतिक गणित का हिस्सा बनाती रही है। नतीजतन आम जनता में असन्तोष गहराया है, विशेषकर उन तबकों में जो स्वयं को राज्य की प्राथमिकताओं से बाहर महसूस करते हैं।

यही असन्तोष भाजपा के लिए राजनीतिक अवसर में बदलता है। तृणमूल की कमजोरियाँ भाजपा की ताकत बन जाती हैं, भले ही भाजपा स्वयं कोई समावेशी, लोकतान्त्रिक और बंगाल की बहुलतावादी परम्परा के अनुरूप शासन मॉडल प्रस्तुत करने में असफल रही हो। इस अर्थ में भाजपा की सम्भावना उसकी अपनी सकारात्मक राजनीति से कम और तृणमूल के कुशासन व सीमाओं से अधिक उपजती है। यही बंगाल की राजनीति का मौजूदा संकट है, जहाँ विकल्प नकारात्मक तुलना के आधार पर तय हो रहे हैं, न कि किसी वैचारिक या नीतिगत स्पष्टता से।

बंगाल की आधुनिक राजनीतिक यात्रा स्वतन्त्रता के बाद काँग्रेस शासन से शुरू होती है। प्रारम्भिक वर्षों में काँग्रेस ने सत्ता सँभाली, लेकिन भूमि प्रश्न, औद्योगिक श्रमिकों की समस्याएँ और गहरी सामाजिक असमानताएँ उसकी प्राथमिकताओं में नहीं आ सकीं। उसकी राजनीति धीरे-धीरे शहरी मध्यवर्ग, नौकरशाही और अभिजात हितों तक सिमटती चली गयी। ग्रामीण बंगाल, किसान और मजदूर खुद को सत्ता-संरचना से बाहर महसूस करने लगे। इसी असन्तोष ने वामपन्थी राजनीति के लिए ठोस जमीन तैयार की। सीपीएम के नेतृत्व में वाम मोर्चा का उदय केवल सत्ता-परिवर्तन नहीं था, बल्कि राजनीति की भाषा और प्राथमिकताओं का निर्णायक बदलाव था। भूमि-सुधार, पंचायती राज, वर्ग-चेतना और श्रमिक अधिकारों ने बंगाल को एक विशिष्ट राजनीतिक पहचान दी। लेकिन तीन दशकों तक चला यह शासन अन्ततः जड़ता का शिकार हो गया। संगठन सत्ता में बदल गया, वैचारिकी प्रबन्धन में सिमट गयी और प्रतिरोध की राजनीति प्रशासनिक यथास्थिति में तब्दील होती चली गयी। सिंगूर और नन्दीग्राम जैसे आन्दोलनों ने वाम मोर्चा के नैतिक आधार को निर्णायक रूप से कमजोर कर दिया। तृणमूल काँग्रेस का उभार इसी वैचारिक और राजनीतिक थकान का परिणाम था। लेकिन आज काँग्रेस का क्षरण, वामपन्थ का पतन और तृणमूल की सीमाएँ—इन तीनों ने मिलकर बंगाल की राजनीति को वैचारिक रूप से दरिद्र और द्विध्रुवीय बना दिया है। यही रिक्ति भाजपा जैसी ताकतों के लिए जगह बनाती है और यही बंगाल के लोकतान्त्रिक भविष्य के लिए सबसे बड़ा खतरा भी है। इस परिदृश्य में सवाल यह नहीं है कि कौन-सी पार्टी सत्ता में आएगी। असली सवाल यह है कि बंगाल किस रास्ते को चुनेगा। क्या वह अपनी ऐतिहासिक बहुलता, बौद्धिक साहस और लोकतान्त्रिक चेतना को आगे बढ़ाएगा, या उसे संकीर्ण पहचान-राजनीति के हवाले कर देगा? बंगाल का यह चुनाव सरकार बनाने या गिराने का नहीं, उसकी आत्मा को लेकर होने वाला निर्णय है। इतिहास गवाह है कि बंगाल ने हमेशा सत्ता के विरुद्ध अपने विवेक को बचाने की कोशिश की है। आज एक बार फिर वही परीक्षा सामने है।

ये प्रश्न ऐसे हैं जिन्हें टालना अब सम्भव नहीं है। लोकतन्त्र का भविष्य उत्तरों से नहीं, सही प्रश्नों से तय होता है। बंगाल—अपने इतिहास, अपनी संस्कृति और अपनी राजनीति के साथ—आज एक बार फिर भारत को यह अवसर दे रहा है कि वह अपने लोकतान्त्रिक मूल्यों की अग्निपरीक्षा करे। यह चुनाव उसी परीक्षा का क्षण है।

(किशन कालजयी)

बंगाल में नवजागरण, 'हिन्दुत्व' और भाजपा

रविभूषण

इस समय बंगाल की जनता को अपने गौरवशाली इतिहास की चिन्ता नहीं है, बंगाल नवजागरण और भारतीय नवजागरण किताबों में है, पहले के 'हिन्दुत्व' से यह हिन्दुत्व भिन्न है, आक्रामक है, हिंस्र है। राजनीतिक दल पुराने हथियारों से लड़ने को अभ्यस्त हैं। भाजपा के पास सब कुछ है, पर सर्वाधिक शक्तिशाली जनता है।

बिहार विधान सभा चुनाव (2025) के अप्रत्याशित परिणाम के बाद 14 नवम्बर, 2025 को प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने अपने भाषण / उद्बोधन में कहा–"गंगा बिहार से बहती हुई बंगाल तक पहुँचती है, बिहार ने भाजपा की विजय का रास्ता बना दिया है। मैं बंगाल के भाइयों-बहनों को आश्वस्त करता हूँ कि भाजपा पश्चिम बंगाल से भी जंगल राज को उखाड़ फेंक देगी।" भारतीय जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष श्यामा प्रसाद मुखर्जी (1901-1953) बंगाल के थे और आर.एस.एस. के संस्थापक केशव बलिराम हेडगेवार (1889-1940) ने कलकत्ता में शिक्षा प्राप्त की थी। 1952 के पहले लोक सभा चुनाव में, भारतीय जनसंघ को प्राप्त 3 सीटों में से 2 सीटें पश्चिम बंगाल से प्राप्त हुई थीं–कलकत्ता, दक्षिण-पूर्व से श्यामा प्रसाद मुखर्जी और मिदनापुर-झाड़ग्राम से दुर्गाचरण बनर्जी विजयी हुए थे। भारतीय जनसंघ का सितारा भाजपा की तरह नहीं चमका था। बंगाल की जब कभी कहीं भी चर्चा होगी, बंगाल रेनेसाँ (नवजागरण) की याद स्वाभाविक रूप से आएगी। पिछले महीने संसद में 'वन्दे मातरम्' की 150वीं वर्षगाँठ पर चर्चा हुई। बंकिम चन्द्र चटर्जी (1838-1894) की यह रचना पहली बार 7 नवम्बर, 1875 को सार्वजनिक हुई। 1870 के दशक में बंकिम ने इसे संस्कृत और बाँग्ला भाषा में लिखा था, जिसे उन्होंने अपने उपन्यास 'आनन्द मठ' में शामिल किया। स्वाधीनता आन्दोलन में यह गीत प्रेरणा-स्रोत बना, जिसे गाकर और जिसका नारा लगाकर स्वाधीनता सेनानी फाँसी पर चढ़े और कारावास की सजा भोगी। 1896 में इसे रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने गाया था और 1950 में इसे राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया गया। यह राष्ट्रगीत राष्ट्रगान 'जन-गण-मन अधिनायक' के समान सम्मानित है और इन दोनों के रचयिता बंगाली हैं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 'जन-गण-मन अधिनायक' की रचना बाँग्ला भाषा में 11 दिसम्बर, 1911 को की थी और पहली बार 27 दिसम्बर, 1911 को कलकत्ता के काँग्रेस अधिवेशन में इसे गाया गया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का बंगाल बाद के बंगाल से भिन्न था।

आधुनिक बंगाल का इतिहास, 1757 के प्लासी युद्ध (23 जून, 1757) के बाद ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी के नियन्त्रण, से आरम्भ होता है। 19वीं शताब्दी का बंगाल केवल नवजागरण (रेनेसाँ) के लिए ही प्रसिद्ध नहीं है, वह 'हिन्दू' और 'हिन्दुत्व' के विचार का भी जन्म-स्थल है। केवल 'वन्दे मातरम्' और 'भारत माता' की अवधारणा ही बंगाल में उत्पन्न नहीं हुई, वहाँ 'हिन्दू खतरे में है' का विचार भी जन्मा। 'भारत माता' की संकल्पना मुख्यतः भारतीय चित्रकार अवनीन्द्र नाथ ठाकुर (1871-1951) द्वारा 1905 में निर्मित चित्र के माध्यम प्रमुख हुई, जिसमें भारत को एक देवी माँ के रूप में चित्रित किया गया था, पर इसका बीज रूप बंकिम के 'आनन्द मठ' (1882) उपन्यास और किरण चन्द्र बन्दोपाध्याय के नाटक 'भारत जननी' (1873) में मौजूद था। राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन में 'वन्दे मातरम्' और 'भारत माता की जय' का उद्घोष सदैव गूँजता रहा है और आज,

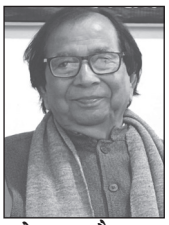

लेखक वरिष्ठ आलोचक और जन संस्कृति मंच के पूर्व अध्यक्ष हैं।
+919431103960
ravibhushan1408@gmail.com